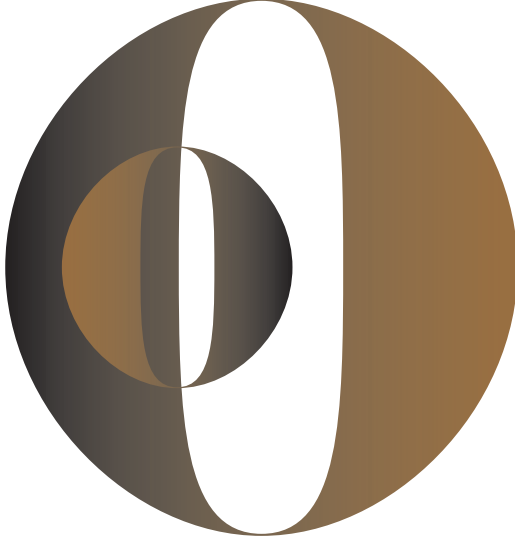


# द्रष्टा

पूज्य दाजी के 69वें जन्मदिवस के अवसर पर  
दिया गया सन्देश



# दाजी

28 सितम्बर, 2024 कान्हा शान्तिवनम्



## द्रष्टा

प्रिय मित्रों,

दर्शन का अर्थ हम प्रायः ईश्वर को देखना समझते हैं। लोगों के भीतर खासकर यह एक गलतफ़हमी है कि किसी महान व्यक्तित्व की झलक पा लेना ही दर्शन कहलाता है। लेकिन ऐसे व्यक्तित्व की झलक यदि आप अपने भीतर ही पा लें तो फिर आप उसे बाहर भी देख पाएंगे। जब हम पूज्य बाबूजी महाराज के पास शाहजहाँपुर जाया करते थे तो उन्हें देखने के हमारे अपने ही दृष्टिकोण और अपने ही चश्मे हुआ करते थे। बहुत से लोगों ने बाबूजी के भीतर बैठ कर हुक्का पीने वाला एक वृद्ध व्यक्ति ही देखा और वे भाग खड़े हुए। लोगों को हम प्रायः उसी रूप में देखते हैं जिस रूप में उनका प्रतिबिम्ब हमारे हृदय पर बनता है। यदि हमारे हृदय का दर्पण साफ़ होता है तो उसमें बना प्रतिबिम्ब असली होता है और यदि हमारे हृदय का दर्पण मलिन या विकृत होता है तो उसमें बने प्रतिबिम्ब के साथ हमारे अपने गुण, विचार, इच्छाएँ, दोष और स्वरूप भी जुड़ जाते हैं। और फिर हम अपने-अपने चश्मों से और अपने-अपने संस्कारों द्वारा प्रवृत्त होकर उस प्रतिबिम्ब का आकलन करने लग जाते हैं और उसे पसंद और नापसन्द करने लगते हैं।

जब आप किसी गुरु के साथ जुड़ते हैं तो शुरू में उसका आकलन कैसे करेंगे? गुरु द्वारा बताई गई बातों का कुछ समय तक अभ्यास करने के बाद यह देखेंगे कि क्या उस अभ्यास से आपके भीतर शान्ति और आन्तरिक रूपान्तरण होने लगा है? यदि ऐसा है तो आगे बढ़ते जाएं और देखें कि आपके व्यक्तित्व में जो थोड़ा-थोड़ा रूपान्तरण हो रहा है उससे आपको क्या-क्या लाभ मिल रहा है।

जब भी आप किसी गुरु के पास जाएंगे तो वह गुरु आपको आपकी प्रवृत्ति और देखने की स्पष्टता के अनुसार असली, नकली या इनके बीच कहीं दिखाई देगा। पवित्रता को महसूस करना हमारे पालन-पोषण और हमारी पृष्ठभूमि द्वारा प्रवृत्त प्रतीत होता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को पूरे सफ़ेद कपड़ों में देखे तो वह सोच सकता है कि, “यह व्यक्ति कितना पवित्र और धार्मिक व्यक्ति है।” लेकिन क्या किसी पूर्णतः नग्न जैन मुनि के प्रति भी किसी वैष्णव या मुस्लिम व्यक्ति की ऐसी ही भावना होगी? सच्चा दर्शन हम तभी कर पाएंगे जब हम स्वयं को संस्कारों से उत्पन्न प्रवृत्तियों से मुक्त कर लेंगे। दर्शन करने के लिए हम अपनी बाहरी आँखों का उपयोग नहीं कर सकते। पवित्र पहनावा हमें छल सकता है और इस प्रकार हम बड़ी आसानी से अपने बीच स्थित किसी पवित्र मनुष्य की उपस्थिति को भाँपने से भी चूक सकते हैं। ज्ञानयोग या आसन में पूर्णता का प्रदर्शन करने वाले किसी मनुष्य की कल्पना करें। इसमें वह इतना रम जाता है कि भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँची पूर्ण व्यक्तित्व मीराबाई की उपस्थिति को भी अनदेखा कर देता है। जब एक इतना ऊँचा हो और दूसरा इतना नीचा तो वह उसे कैसे पहचान पाएगा?



एक सूफ़ी संत के बारे में एक सुन्दर कहानी है। एक राजा ने उस सूफ़ी से दीक्षा लेनी चाही लेकिन सूफ़ी उसे टालता रहा। (शायद सूफ़ी को राजा की असली दशा का पता था।) समय बीतता गया और राजा को निराशा होने लगी क्योंकि सूफ़ी दिन ब दिन और महीने दर महीने दीक्षा देने से मना ही करता जा रहा था। अन्ततः राजा ने यह मालूम करने का फैसला किया कि वह सूफ़ी असली है या नकली। उसने सूफ़ी की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए उसके चारों ओर जासूस लगा दिए। एक दिन जब सूफ़ी नदी पार कर रहा था तो जासूस भी उस पर नजर रखते हुए उसके पीछे हो लिए। उन्होंने सूफ़ी को नदी के उस पार एक महिला से मिलते हुए देखा। सूफ़ी ने एक चटाई बिछाई और उसकी गोद में अपना सिर रख दिया। महिला ने उसके सिर को थपथपाया और उसे कुछ पीने को दिया। उस पर कुछ आरोप लगाने के लिए सबूत मिलने पर जासूस रोमांचित हो उठे। राजा ने अवसर का लाभ उठाया और सूफ़ी को अपने सामने बुलाकर पूछा, “तुम वहाँ क्या

कर रहे थे? तुम असली गुरु हो या नकली?” सूफी ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, “कृपया ऐसे न बोलें अन्यथा आप पछताएंगे। मेरे साथ आएँ और मैं आपको दिखाऊंगा कि असल में मैं क्या कर रहा था।” वह राजा को नदी के उस पार ले गया और वहाँ हाथ में गिलास और चाय का बर्तन लिए एक बूढ़ी औरत आ गई। वह सूफी की माँ थी।

हमारे भीतर जो संस्कार होते हैं वे हमारी सोच को विकृत कर देते हैं जिससे गलतफ़हमी उत्पन्न होती है। अपने जीवन को हम इसी आधार पर सँवारते या बिगाड़ते हैं कि हम कितने समझदार हैं या कितने नासमझ। लेकिन इन संस्कारों के प्रभाव को हम प्रकट होने से पहले ही टाल भी सकते हैं और उनके स्थान पर सही सोच स्थापित कर सकते हैं जो फिर हमें सही समझ की ओर ले जाती है। सही समझ होने पर फिर शायद ही कोई संस्कार बनते हों विशेषकर नकारात्मक संस्कार।

जब कोई समस्या आए तो प्रतिक्रिया करने की बजाय थोड़ा रुकें ताकि इससे पहले कि आपका हृदय इससे प्रभावित हो आपको स्पष्ट रूप से सोचने का मौका मिल जाए। इससे आपके भीतर उस व्यक्ति के प्रति जो आपको परेशान कर रहा है सहानुभूति जाग जाती है और आप समस्या को जाने देते हैं। और फिर आप भीतर ही भीतर मुक्त महसूस करते हैं। इसी प्रकार प्रकृति के बारे में आपकी यह समझ भी कि जीवन में चीजें किस प्रकार कार्य करती हैं आसान हो जाती है। एक सही समझ से एक और गहरी समझ उत्पन्न होती है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति की प्रवृत्ति ही समझने की नहीं है वह व्यक्ति हमेशा नासमझी की स्थिति में ही रहता है यहाँ तक कि वह जानबूझकर न समझने के नए-नए तरीके भी ढूँढ लेता है। सही समझ के साथ-साथ जीवन के प्रति एक ईमानदारीपूर्ण दृष्टिकोण भी होना चाहिए।

एक समझदार व्यक्ति परिस्थिति की माँग के अनुसार कार्य करता है। उसका कोई भी कार्य एक जैसा नहीं होता क्योंकि हर परिस्थिति भिन्न होती है। नौवें उसूल की व्याख्या में बाबूजी ने यह लिखा है कि प्रकृति अपने कार्य की अभिव्यक्ति विविध प्रकार से करती है। इसी प्रकार हमारा व्यवहार भी विविध कार्यों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुसार ही होना चाहिए। एक अत्यधिक समझदार व्यक्ति हर स्थिति में समान व्यवहार करने की कट्टरता कभी नहीं दिखा सकता। एक समझदार व्यक्ति कट्टरता और नियमों के बंधन से परे होता है। वह लचीलेपन और स्वतंत्रता का आनन्द उठाता है। सही समझ और

होश में रहकर कार्य करने में, अनुसरण करने में और आज्ञा पालन करने में तथा नासमझी और बेहोशी में रहकर कार्य करने में, अनुसरण करने में और आज्ञा पालन करने में भारी अंतर होता है।

इसके अतिरिक्त यदि हम समझदार हैं तो हम तनाव और अपराध-बोध को फटकने नहीं देंगे और इस प्रकार संस्कारों के जमने से स्वयं को बचा लेंगे। पूर्णतः कट्टर जीवन-शैली के साथ-साथ स्वतंत्र इच्छा कैसे रह सकती है? स्वतंत्र इच्छा के बिना मुक्ति का कोई अर्थ नहीं। एक कट्टर जीवन ईश्वरीय जीवन का उल्टा होता है। ईश्वरीय जीवन अपने हृदय की आवाज से आवाज मिला कर जिया जाता है। कट्टर जीवन अहम् द्वारा संचालित होता है जैसे किसी धर्म विशेष या संप्रदाय विशेष के साथ अपनी पहचान बनाने में गर्व महसूस करना।

कभी-कभी समझदारी बोझ भी बन सकती है। गत शताब्दियों के उन भारतीय और अफ्रीकी गुलामों के बारे में सोचें जिन्हें उनके देश की धरती से किसी ऐसी जगह ले जाया जाता था जिसकी उन्हें कोई भनक या खयाल भी नहीं होता था। समुद्री यात्रा के दौरान उनके तनाव के स्तर और उन्हें बंधक बनाने वालों के तनाव-स्तर के अंतर की कल्पना करें। अपनी यात्रा के उद्देश्य की समझ उत्पन्न होने से उनका तनाव निस्संदेह और भी अधिक बढ़ जाता होगा! अतः हमें जागरूकता के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिणामों को महत्त्व देना चाहिए। यौगिक जीवन-शैली अपनाने के दृष्टिकोण से देखा जाए तो समझदार होना हमें आक्रामक होने की व्यर्थता को समझने में मदद करता है। जब हमारे भीतर सहानुभूति और करुणा होगी तो हम दूसरे के दृष्टिकोण को आसानी से भाँप लेंगे और इस प्रकार किसी अपराध या हिंसा पर उतारू न होंगे।

इसी प्रकार एक समझदार व्यक्ति क्षमा के महत्त्व को भी जान पाता है। और अंततः एक समझदार व्यक्ति एक अनुशासित और शिक्षाप्रद जीवन के महत्त्व को जान जाता है और ऐसा व्यक्ति ही असली शिष्य होता है। प्राणाहुति की मदद से ध्यान करना हमारे भीतर एक सही सोच और सही समझ उत्पन्न करने में मदद कर सकता है। लेकिन दुर्भाग्यवश यह भी सत्य है कि यदि किसी चोर की चेतना पर नकारात्मक प्रवृत्तियों की छाया हावी रहेगी तो प्राणाहुति उस चोर को एक पक्का चोर बनाने में भी मदद कर सकती है। इसीलिए हार्टफुलनेस अशुद्धियों और जटिलताओं को दूर कर पवित्र और सरल बनने की जरूरत

पर जोर देता है। एक अनुशासित अभ्यास के परिणाम का अनुभव करने पर हम अपनी साधना को बजाय किसी जोर-जबरदस्ती के प्रसन्नतापूर्वक और गहराई से करने लगते हैं (यद्यपि आरम्भ में एक स्तर तक नियंत्रण का होना हमारे लिए लाभकारी हो सकता है)।



सजग रहना और गौर करते रहना स्पष्ट दृष्टि प्राप्त करने का एक दूसरा पहलू है जिसका प्रशिक्षण लिया जा सकता है। जब बच्चे बहुत छोटे हों तो उनसे पूछें कि उन्हें क्या दिखाई दे रहा है? इस प्रकार के प्रश्न जैसे, “इस मैदान में आपको क्या दिखाई दे रहा है? इस फूल पर आपको क्या दिखाई दे रहा है? इसमें कितने रंग हैं? इसमें कितनी पंखुड़ियाँ हैं? फूल के और क्या गुण होते हैं?” उन्हें गहराई से देखने का प्रशिक्षण दें जैसे, “आज सूरज कितने बजे उदय हुआ?” देखना कि क्या कल भी वह इसी समय पर उदय होगा? वह किस ओर से उदय हुआ? वह किस ओर अस्त हुआ? चन्द्रमा कब दिखाई दिया? यह कब बड़ा होता है और कब छोटा?” उन्हें कुछ ऐसा अवलोकन करने को दें जो उन्होंने देखा हो जैसे, जब वे किसी के घर, मित्र के पास या स्कूल जाएँ तो उनसे पूछें कि दरवाजा किस दिशा में था? आपने घर में उत्तर से प्रवेश किया या दक्षिण से या पूर्व से या पश्चिम से? उनका सोफ़ा किस रंग का है? छत का क्या रंग है? वहाँ कितनी खिड़कियाँ हैं?” बच्चों को ऐसी चीजों पर गौर करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

अब आप देखने वाली चीजों से सुनने वाली चीजों पर आ सकते हैं जैसे, “क्या आपने आज सुबह किसी चिड़िया की आवाज सुनी? आपने कितनी आवाजें सुनीं?” बच्चे के प्रशिक्षण का विकास जारी रखें और उसे अनुभूति के क्षेत्र में ले आएँ। “चिड़िया खुश थी या दुखी? वो नर थी या मादा?” फिर जब भी आपको मौका मिले बच्चे से पूछें, “आपको भीतर से कैसा महसूस हो रहा है? आप खुश हो या दुखी या कैसे भी नहीं? जब आपको बुरा लगता है तो आपको अपने हृदय में कैसा महसूस होता है? भारी या हल्का? ऐसे प्रश्न उसे गहरे से गहरे स्तर पर चीजों को महसूस करने के लिए तैयार करेंगे।

ध्यान में हम स्वयं को कई बारीकियों के साथ अधिक से अधिक जागरूक, सतर्क, संवेदनशील तथा बोधशील बनाने का प्रशिक्षण देते हैं जैसे ध्यान के दौरान रंग देखना, अनुभूतियाँ ग्रहण करना, विचारों को महसूस करना, स्पंदन महसूस करना तथा ध्यान के पश्चात की दशाओं का अनुभव करना। सिटिंग के पश्चात ये सारी बातें अपने प्रशिक्षक को बताएँ जिससे कि वे इन सब बातों को जोड़ कर किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकें कि, “जब भी मैं इस प्रकार से कार्य करता हूँ तो मुझे यह फ्रीडबैक मिलती है।” फिर हम कार्य और उसके परिणाम के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। हम वातावरण को उसी प्रकार महसूस कर सकते हैं जिस प्रकार कि किसी व्यक्ति की भावनाओं को। किसी विशेष स्थान पर हम कैसा महसूस करते हैं? यह सारा प्रशिक्षण हमें भीतर से एक प्रेम भरी लेजर जैसी दृष्टि ग्रहण करने के लिए तैयार करता है। कुछ देखने के लिए प्रेम एक जरूरी तत्व होता है। प्रेम के बिना हम किसी का भी अध्ययन नहीं कर सकते।

हम लगभग सभी विभिन्न उद्देश्यों के साथ अपने गुरु को समझने का अभ्यास करते हैं। यह देखना हमेशा हमारे स्तर से होता है। जैसे, जब सूर्यास्त होता है तो घाटी में रहने वाले लोग उसके सौन्दर्य को नहीं देख पाते क्योंकि वहाँ वह क्षितिज पर अस्त नहीं होता। इसके विपरीत पर्वत के शिखर पर खड़ा व्यक्ति एक सुन्दर दृश्य देख पाता है। ऊँचाई उस अंतर को पैदा करती है। चेतना की सीढ़ी पर चढ़ने से, जिसके पायदान चक्र होते हैं, हम थोड़ा-थोड़ा करके ऊपर उठते जाते हैं और हमारी दृष्टि भी थोड़ा-थोड़ा करके स्पष्ट होती जाती है और हम विभिन्न स्तरों से दर्शन प्राप्त करते जाते हैं।

इसी प्रकार अपनी लगातार बढ़ती जागरूकता के कारण हम गुरु के आश्चर्य को भी समझना आरंभ कर देते हैं। मिलन और गुरु के पूर्ण दर्शन तभी संभव हैं जब दोनों एक हो जाएँ। अन्यथा तब तक हमारी सारी जानकारी और हमारा दर्शन प्रवृत्तियों पर आधारित होंगे। एक प्रवृत्त मन से हम कभी भी सच्चा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते।





जब आप गुरु के साथ होते हैं तो आपको पूर्ण रूप से उनके साथ होना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश आजकल हर चीज हमारा ध्यान भटका रही है जिसमें फोन पहले स्थान पर है। जब आप इच्छाओं से, भटकावों से और संस्कारों से मुक्त हो जाएंगे तो उनकी उपस्थिति का पूरा लाभ भला आप कैसे नहीं उठा पाएंगे? उनके सानिध्य में होने पर आपके भीतर आदर, प्रेम, विनम्रता और खुलेपन के गुण होने चाहिए। इच्छाओं को पालना, प्रार्थना के माध्यम से उन्हें व्यक्त करना या उन्हें मात्र अपने मन में रखना भी आपको उनके सच्चे दर्शन से वंचित कर देगा। प्रार्थना में सभी प्रकार की जरूरतों की अभिव्यक्ति होती है और उनके लिए आखिर हम देखें भी तो किसकी ओर? लेकिन यदि आप ऐसी सौदेबाजी करेंगे कि, “हे ईश्वर, यदि आप मेरे लिए ऐसा कर देंगे तो मैं आपको करोड़ों दूंगा, मैं बेघरों के लिए इतनी झोपड़ियाँ बना दूंगा, मैं आपकी मूर्ति पर चादर चढ़ाऊंगा” तो यह ज्यादाती होगी। ईश्वर से प्रेम, आदर या विनम्रता की माँग करना भी आपके अहम् में कुछ जोड़ देता है। यह ज्यादा से ज्यादा भूखे लोगों को खाना खिलाने और ज्यादा से ज्यादा बेघरों को घर देने के बहाने ईश्वर से ज्यादा से ज्यादा सम्पन्नता माँगने से भिन्न नहीं। रिश्वतखोरी का यह धंधा थमता नहीं दिखाई देता। जरा सोचें कि यदि कोई मनुष्य ईश्वर को रिश्वत देने की बात सोच रहा हो तो वह सरकारी कर्मचारियों और राजनेताओं के साथ कैसा व्यवहार करता होगा? ऐसे व्यक्ति पर हम दया ही कर सकते हैं।

जब आपके पास इच्छाओं का सामान हो और उसकी पूर्ति के लिए आप गुरु के पास जा रहे हों तो आप गुरु के सच्चे दर्शन नहीं कर पाएंगे। दर्शन की पहली जरूरत पवित्रता है। दूसरी यह कि जब आप उनके साथ हों तो आप पूर्णतः स्थिर अर्थात् पूर्ण प्रत्याहार की स्थिति में हों। लेकिन फिर आपको उनके साथ एकलय भी होना होगा। जैसे यदि आप संगीतज्ञों के किसी समूह से जुड़ना चाहते हों तो आपको भी वही संगीत छेड़ना होगा जो संगीत वे छेड़ रहे हों। उनके सुर में सुर मिलाने के लिए आप अपना राग नहीं अलाप सकते। संगीत में एकलयता होनी चाहिए अन्यथा वह एक शोर बन जाएगा और यदि आपको उनके दर्शन हो भी जाएं तो भी वे व्यर्थ हो जाएंगे।

जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विनाशकारी विश्वरूप दिखाया तो उन्होंने यह दिखाया कि विनाश का कार्य तो पहले ही संपन्न हो चुका है। अर्जुन के लिए जो सन्देश था वो यह कि ‘कार्य तो हो चुका है। अब तुम्हें केवल अन्तिम चरणों को पूरा करने की जरूरत

है।' फिर भी श्रीकृष्ण का विनाशकारी रूप देख अर्जुन भयभीत हो गया और श्रीकृष्ण से उसने अपने जाने-पहचाने मित्र-रूप में लौट आने को कहा।

किसी महान व्यक्तित्व की वास्तविकता के साथ एकलय होने के लिए आपको उसी वास्तविकता का स्पर्श अपने भीतर भी करना होगा।

इसके अतिरिक्त युद्ध में दूसरी ओर खड़ी उच्च आत्माओं भीष्म और द्रोण ने भी कृष्ण का यह रूप देखा और भय से आकुल हो गए। लेकिन क्या वे सचमुच भयाकुल थे? यदि होते तो उन्होंने अपने हथियार डाल दिए होते और कहा होता, “युद्ध की कोई जरूरत नहीं।” श्रीकृष्ण के विश्वरूप ने यदि अर्जुन को हथियार उठाने के लिए आश्वस्त किया था तो उसने भीष्म और द्रोण को भी अपने-अपने हथियार डालने को आश्वस्त कर दिया होता। इस दर्शन ने किसी को भी स्वतः ज्ञान प्रदान नहीं किया। अर्जुन को भी नहीं। हालांकि वह लड़ने को तैयार हो गया था लेकिन फिर भी ऐसा कह रहा था कि, “आपके इस रूप को मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ।” अतः ईश्वर के सच्चे स्वरूप को देख लेने से जीवन की समस्याएँ स्वतः हल नहीं हो जातीं। आपको यह कहने से कुछ सन्तोष मिल सकता है कि, “मुझे ईश्वर का दर्शन हुआ” या “मुझे मूर्ति का दर्शन हुआ” या “मुझे कुछ दिव्य गुणों का अहसास हुआ” लेकिन बहुत कुछ प्राप्त करने को रह जाता है। ईश्वर का दर्शन एक और दूसरा अनुभव है जो आप कर सकते हैं। यह क्षणिक होता है। उस अनुभव का आप क्या करेंगे? “मैंने ईश्वर को देखा।” तो क्या हुआ? क्या इसके कारण आप कुछ बने? किसी महान व्यक्तित्व की वास्तविकता के साथ एकलय होने के लिए आपको उसी वास्तविकता का स्पर्श अपने भीतर भी करना होगा।

एक बार बाबूजी ने एक पत्र के उत्तर में लिखा था, “यह अच्छी बात है कि आप महापुरुषों के दर्शन करना चाहते हैं। लेकिन बेहतर यह होगा कि आप केवल अपने ही दर्शन करने का प्रयास करें।” हमारे असल स्वरूप के प्रकट होने पर उसे कौन देखता है और क्या दिखाई देता है? देखने वाले के लिए हम प्रायः ‘दर्शक’ शब्द का उपयोग करते हैं। रोजमर्रा की भाषा में दर्शक का तात्पर्य किसी दर्शक या श्रोता से होता है जो किसी चीज का अवलोकन कर रहा हो। एक संवेदनशील प्राणी के रूप में हम सभी दर्शक हैं क्योंकि

हम महसूस करते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, अनुभव करते हैं और समझते हैं। योग में इसके लिए एक सटीक शब्द 'द्रष्टा' है। 'द्रष्टा' विशेष रूप से "पुरुष" या 'आत्मा' का संबोधन है जो अंतर-स्थित असल साक्षी है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और आत्मा के लिए समग्र रूप से उपयोग में लाए जाने वाले शब्द 'दर्शक' से भिन्न 'द्रष्टा' केवल आत्मा के साक्षी होने की क्षमता को दर्शाता है मन, आँखों या अन्य इन्द्रियों की क्षमता को नहीं।

## आत्मा एक शुद्ध प्रकृति है। वह ज्ञान और अनुभव की सभी वस्तुओं की प्रकृति की साक्षी है।

आत्मा एक शुद्ध प्रकृति है। वह ज्ञान और अनुभव की सभी वस्तुओं की प्रकृति की साक्षी है। वे सभी चीजें जिनका अहसास, अनुभव या ज्ञान प्रकृति करती है 'वस्तु' की श्रेणी में आती हैं अर्थात् वह जिसे महसूस किया जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है और जाना जा सकता है। अपनी शुद्ध प्रकृति के कारण आत्मा स्वयं को ही महसूस करने, अनुभव करने या जानने की वस्तु नहीं बन सकती। ऐसा होने पर हम उसका दर्शन कैसे कर सकते हैं?

जिस प्रकार सूर्य से उत्सर्जित प्रकाश वस्तुओं से टकराकर उन्हें हमारी आँखों को दिखाता है उसी प्रकार आत्मा की चेतना भी ज्ञान की वस्तुओं को प्रकाशित कर द्रष्टा को उनका दर्शन कराती है। वह जो चेतना के इस प्रकाश से प्रकाशित होता है 'चेतना का क्षेत्र' कहलाता है। चेतना के प्रकाश में इस क्षेत्र में मौजूद वस्तुएं प्रकृति को ज्ञात हो जाती हैं। योग की भाषा में इस क्षेत्र को 'चित्त' कहा जाता है जिसके अन्तर्गत मनस्, बुद्धि अहंकार और स्वयं चित्त (चेतना का प्रकाश) होते हैं। चित्त में किसी वस्तु का अनुभव हम किस सीमा तक कर सकते हैं यह आत्मा के प्रकाश का संस्कारों, वृत्तियों, अहंकार तथा अन्य अशुद्धियों से ढके होने की सीमा पर निर्भर करता है।

कई लोग अहंकार को ही भ्रमवश आत्मा मानते हैं। यह प्रसिद्ध प्रश्न कि "मैं कौन हूँ?" प्रायः जिज्ञासुओं के सम्मुख यह महसूस कराने के लिए रखा जाता है कि वे न तो शरीर हैं और न ही मन बल्कि आत्मा हैं। लेकिन इस प्रश्न का आधार ही गलत है। यह निष्कर्ष

कि “मैं आत्मा हूँ” गलत है और उतना ही गलत है जितना यह सोचना कि “मैं शरीर हूँ” क्योंकि “मैं” के रूप में जो पहचान बनाता है वह अहम् है और “मैं” का वह संबोधन शरीर के लिए भी हो सकता है, मन के लिए भी और आत्मा के लिए भी।

अहम् “मैं” का भाव है। पतंजलि ने इसे ‘अस्मिता’ कहा है। इस “मैं” को नकली स्वरूप के रूप में पहचाना जाना चाहिए क्योंकि यह हमेशा अनुभव की वस्तु होता है उसकी प्रकृति कभी नहीं। यद्यपि हमारे भीतर इस प्रकार के विचार जैसे “मैं कर रहा हूँ”, “मैं सोच रहा हूँ” और “मैं हूँ” आते हैं लेकिन ये विचार हमारी असल प्रकृति आत्मा द्वारा देखी गई वस्तु होते हैं। अतः स्वयं के बारे में किसी भी विचार को एक वस्तु ही समझना चाहिए भले ही उससे यह भ्रम उत्पन्न होता हो कि “मैं ही द्रष्टा हूँ” या “मैं ही अनुभवकर्ता हूँ।”

जागरूकता में कमी या ‘अविद्या’ के कारण ही हम इस “मैं” को अनुभव करने की असल प्रकृति “आत्मा” समझ बैठते हैं। यदि “मैं” के भाव के साथ कुछ भी जाना या समझा जा सकता है तो उसे ज्ञान की एक वस्तु ही समझना चाहिए उसकी प्रकृति नहीं। संक्षेप में कहें तो आत्मा हमारा ‘सार’ है हमारे “मैं का भाव” नहीं।

चित्त पर जब अहम् छा जाता है तो उसके क्षेत्र में मौजूद हर चीज को “मैं” से जोड़ कर देखा जाने लगता है। अपने स्वरूप से किसी चीज को जोड़कर देखना सारूप्यता कहलाती है। सारूप्यता पर विजय प्राप्त करने की विधि ‘सतत स्मरण’ है जो AEIOU<sup>1</sup> का अभ्यास करने जैसा है। सतत स्मरण उत्पन्न करने की तीन प्राथमिक विधियाँ हैं जो इस प्रकार हैं –

1. ईश्वर के स्मरण में कार्य करना।
2. ईश्वर को समर्पित करते हुए कार्य करना।
3. ईश्वर की ओर से आया समझ कर कार्य करना।

इन विधियों का अभ्यास करने से हमारी चेतना के क्षेत्र में ईश्वर की उपस्थिति व्याप्त होने लगती है और हम अपने कार्यों और अनुभवों को स्वयं से जोड़कर देखने की बजाय

---

1 ‘यर्निंग ऑफ़ द हार्ट’ भाग-2 में AEIOU का अध्याय देखें।

ईश्वर या मालिक से जोड़कर देखने लगते हैं। परिणामस्वरूप 'मैं' का नकली स्वरूप अपनी शक्ति खोने लगता है।

क्या 'मैं' का विलुप्त होना हमें 'द्रष्टा' का दृश्य प्रदान करता है? पतंजलि के अनुसार -

**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**

तब (जब मन की वृत्ति-सारूप्य गति ठहर जाती है) दृष्टा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

(पतंजलि योगसूत्र 1.3)

यह समझना कि द्रष्टा की प्रकृति अज्ञानता है इस कथन की कुंजी है। अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित द्रष्टा न तो स्वयं के प्रति जागरूक होता है (क्योंकि प्रकृति स्वयं को नहीं देख सकती) और न ही उस नकली स्वरूप 'मैं' के प्रति जो ईश्वर की याद में विलीन हो जाता है।

एक बार बाबूजी ने बातों-बातों में ही एक बड़ी गहरी बात बता दी थी कि जब वह 'मैं' शब्द बोलते हैं तो उन्हें यह मालूम ही नहीं पड़ता था कि उनका यह संबोधन किसके लिए होता है। आत्म-स्वरूप का दर्शन और कुछ नहीं बल्कि आत्म-विस्मृति है अर्थात् एक ऐसी दशा जिसमें द्रष्टा पूर्णतः स्वयं में ही खो जाता है। बाबूजी यह पूछे जाने का कि "मैं कौन हूँ?" विरोध किया करते थे। स्वयं को जानने की कोशिश करने बजाय वह स्वयं को भूलने की सलाह देते थे। स्वयं को भूलने के लिए एक केन्द्र-बिंदु की जरूरत होती है और यही कारण है कि हम ध्यान और सतत स्मरण का अभ्यास करते हैं।

यह ध्यान रहे कि स्वयं को भूलने पर भी द्रष्टा सांसारिक वस्तुओं व अन्य प्राणियों को देखा करता है। जो विलीन होता है वह उसके निज स्वरूप का भाव होता है और इस प्रकार संस्कारों का बनना और उनका गहरा होना भी थम जाता है।

प्रायः हम ध्यान में गुरु का रूप दिखाई देने को ही गुरु-दर्शन समझ बैठते हैं। यह अवधारणा केवल उस सीमा तक ही सत्य होती है जिस सीमा तक हम गुरु के असली

रूप को निराकार समझ पाते हैं। जिस प्रकार आत्म-स्वरूप का दर्शन स्वयं को भूल जाने, स्वयं को विलीन कर देने या आत्म-निषेध की एक दशा होती है उसी प्रकार गुरु का दर्शन भी निराकार परब्रह्म में विलीन हो जाने की एक दशा होती है जिसके कोई भी सीमित लक्षण जैसे कोई नाम या कोई गुण नहीं होते। इस लयावस्था में या मालिक से एक हो जाने की इस दशा में 'देखने' का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि एक हो जाने की अवस्था में विषय-वस्तु वाला कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता। ऐसी होती है दर्शन की परम अवस्था।

प्रेम और आदर सहित,  
कमलेश

पूज्य दाजी के 69वें जन्मदिवस के अवसर पर  
दिया गया सन्देश  
28 सितम्बर, 2024 कान्हा शान्तिवनम्

heartfulness  
advancing in love